छन्द-दृष्टि से दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति : पाठ-निर्धारण

अशोक कुमार सिंह

छन्द की दृष्टि से **दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति** के अध्ययन से पूर्व इसकी गाथा संख्या पर विचार कर लेना आवश्यक है। इस निर्युक्ति के प्रकाशित संस्करणों एवं जैन विद्या के विद्वानों द्वारा प्रदत्त इसकी गाथा संख्या में अन्तर है। इसके दो प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हैं — मूल और चूर्णि सहित मणिविजयगणि ग्रन्थमाला, भावनगर १९५४ संस्करण[1] और '**निर्युक्तिसङ्ग्रह**' शीर्षक के अन्तर्गत सभी उपलब्ध निर्युक्तियों के साथ विजयजिनेन्द्रसूरि द्वारा सम्पादित लाखाबावल १९८९ संस्करण[2]।

भावनगर संस्करण में गाथाओं की संख्या १४१ और लाखाबावल संस्करण में १४२ है। जबकि वास्तव में लाखाबावल संस्करण में भी १४१ गाथायें ही हैं। प्रकाशन-त्रुटि के कारण क्रमाङ्क १११ छूट जाने से गाथा क्रमाङ्क ११० के बाद ११२ मुद्रित है। फलतः गाथाओं की संख्या १४१ के बदले १४२ हो गई है, जो गलत है। अधिक सम्भावना यही है कि लाखाबावल संस्करण का पाठ, भावनगर संस्करण से ही लिया गया है। इसलिए भी गाथा संख्या समान होना स्वाभाविक है।

'Government Collections of Manuscripts'[3] में एच॰ आर॰ कापडिया ने इसकी गाथा संख्या १५४ बताई है। '**जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**'[4] **भाग-१** में भी इसकी गाथा सं॰ १५४ है। '**जिनरत्नकोश**'[5] में यह संख्या १४४ है। कापडिया द्वारा अपनी पुस्तक *'A History of the Jaina Canonical literature of the Jainas'*[6] में इस निर्युक्ति की गाथा संख्या के विषय में दिया गया विवरण अत्यन्त भ्रामक है। वहाँ दी गई अलग-अलग अध्ययनों की गाथाओं का योग ९९ ही होता है।

वस्तुतः *'Government Collections'* में प्राप्त अलग-अलग अध्ययनों की गाथाओं का योग १४४ ही है, १५४ का उल्लेख मुद्रण-दोष के कारण है। इसका विवरण देखने योग्य है[7] -

"....this work ends on fol. 5; 154 gāthās in all; Verses of the different sections of this nijjutti corresponding to the ten sections of *Daśāśrutaskandha* are separately numbered as under :

असमाहिट्ठाणनिज्जुत्ति	**११**	**Verses**
सबलदोसनिज्जुत्ति	**३**	**Verses**
आसायणनिज्जुत्ति	**१०**	**Verses**
गणिसंपयानिज्जुत्ति	**७**	**Verses**
चित्तसमाहिट्ठाणनिज्जुत्ति	**४**	**Verses**
उवासगपडिमानिज्जुत्ति	**११**	**Verses**
भिक्खुपडिमानिज्जुत्ति	**८**	**Verses**
पज्जोसवणाकप्पनिज्जुत्ति	**६७**	**Verses**
मोहणिज्जट्ठाणनिज्जुत्ति	**८**	**Verses**
आयतिट्ठाणनिज्जुत्ति	**१५**	**verses**

...आचारदसाणं निज्जुत्ती ॥ छ ॥ गाथा १५४ ॥" (योग १४४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १ का विवरण भी संभवतः इसी स्रोत पर आधारित है। इसलिए १५४ गाथाओं का उल्लेख सही अर्थों में १४४ गाथाओं का ही माना जाना चाहिए। कापडिया का उत्तरवर्ती (*Canonical Literature*)[८] विवरण निश्चित रूप से अपने पूर्ववर्ती विवरण पर ही आधारित होगा। परन्तु मुद्रण दोष ने विवरण को पूरी तरह असङ्गत बना दिया है। उनके विवरण से प्रथम दृष्टि में इस निर्युक्ति में १२ अध्ययन होने का भ्रम हो जाता है - ९, ११, ३, १०, ७, ४, ११, ८, ६, ७, ८ और १५। साथ ही इन गाथाओं का योग भी ९९ ही होता है जबकि ध्यान से देखने पर पता चल जाता है कि यह विसङ्गति निश्चित रूप से मुद्रण-दोष से उत्पन्न हुई है। इसमें शुरु का ९ और नौवें, दसवें क्रम पर उल्लेखित ६, ७ के मध्य का विराम, अनपेक्षित है। इस ९ को गणना से अलग कर देने और ६, ७ के स्थान पर ६७ पाठ हो जाने पर अध्ययन संख्या १० और गाथा संख्या १४४ हो जाती है और कापडिया के उक्त दोनों विवरण एक समान हो जाते है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस निर्युक्ति की गाथा-संख्या १४४ और १४१ उल्लिखित है। यह संख्या-भेद पाँचवें अध्ययन में क्रमशः चार (१४४) और एक (१४१) गाथा प्राप्त होने के कारण है।

द. नि. की गाथा सं. निर्धारित करने के क्रम में **नि. भा. चू.** का विवरण भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत निर्युक्ति के आठवें **'पर्युषणाकल्प'** अध्ययन की सभी गाथायें **नि. भा.** के दसवें उद्देशक[९] में उसी क्रम से 'इमा णिज्जुत्ती' कहकर उद्धृत हैं। निर्युक्ति के आठवें अध्ययन में ६७ गाथायें और **नि. भा.** के दसवें उद्देशक के सम्बद्ध अंश में ७२ गाथायें हैं। इस प्रकार निर्युक्ति गाथाओं के रूप में उद्धृत पाँच गाथायें अतिरिक्त हैं। **नि. भा.** में इनका क्रमाङ्क ३१५५, ३१७०, ३१७५, ३१९२ और ३२०९ है। इन अतिरिक्त गाथाओं का क्रम **द. नि.** में गाथा सं. क्रमशः ६८, ८२, ८६, १०१ एवं १०९ के बाद आता है। **नि. भा.** में उल्लिखित अतिरिक्त गाथायें निम्न हैं -

पण्णासा पाडिज्जति, चउण्ह मासाण मज्झओ ।
ततो उ सत्तरी होइ, जहण्णो वासुवग्गहो ॥३१५५॥

विगतीए गहणम्मि वि, गरहितविगतिग्गहो व कज्जम्मि ।
गरहा लाभपमाणे, पच्चयपावप्पडीघातो ॥३१७०॥

डगलच्छारे लेवे, छड्डुण गहणे तहेव धरणे य ।
पुंछण-गिलाण-मत्तग, भायण भंगाति हेतू से ॥३१७५॥

चउसु कतासेसु गती, नरय तिरिय माणुसे य देवगती ।
उवसमह णिच्चकालं, सोग्गइमग्गं वियाणंता ॥३१९२॥

असिवे ओमोयरिए, रायदुट्ठे भए व गेलण्णे ।
अद्धाण रोहए वा, दोसु वि सुत्तेसु अप्पबहुं ॥३२०९॥

इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि **द. चू.** (भावनगर) में ऊपर उल्लिखित गाथा सं. ६८ एवं ८६ की चूर्णि के रूप में प्राप्त विवरण में **नि. भा. चू.** के समान ही गाथा संख्या ३१५५ और ३१७५ की चूर्णि भी प्राप्त होती हैं। गाथा सं. ८२ के अंश **नि. भा.** की ३१६९ और ३१७० दोनों गाथाओं में प्राप्त होते हैं। ८२ की चूर्णि भी **नि. भा. चू.** की इन दोनों गाथाओं की समन्वित चूर्णियों के समान है। जबकि गाथा सं. १०१ की चूर्णि के साथ **नि. भा.** ३१९२ की चूर्णि और ११८ की चूर्णि के साथ ३२०९ की चूर्णि **द. चू.** में प्राप्त नहीं होती है। तथ्य को स्पष्ट करने के लिए दोनों चूर्णियों के सम्बद्ध अंश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है -

"कहं पुण सत्तरी ? चउण्हं मासाणं सवीसं दिवससतं भवति, ततो सवीसतिरातो मासो पण्णासं दिवसा सोधिता सेसा सत्तरिं दिवसा । जे भद्दवयबहुलस्स दसमीए पज्जोसवेंति तेसिं असीति दिवसा जेट्ठोग्गहो, जे सावणपुन्निमाए पज्जोसविंति तेसिं णं णउत्ति दिवसा मज्झि जेट्ठोग्गहो, जे सावणबहुलदसमीए ठिता तेसिं दसुत्तरं दिवससतं जेट्ठोग्गहो, एवमादीहिं पगारेहिं वरिसारत्तं एगखेत्ते अच्छित्ता कत्तियचाउम्मासिए णिगंतव्वं । अथ वासो न ओरमति तो मग्गसिरे मासे जद्दिवसं पक्कमट्टियं जातं तद्दिवसं चेव णिग्गंतव्वं, उक्कोसेण तिन्नि दसराया न निग्गच्छेज्जा । मग्गसिरपुन्निमा एत्तियं भणियं होइ मग्गसिरपुन्निमाए परेण जइ विप्लवंतेहिं तहवि णिगंतव्वं । अध न निग्गच्छंति ता चउलहुगा । एवं पंचमासिओ जेट्ठोग्गहो । - द० चू०[१०]

कहं सत्तरी ? उच्यते - चउण्हं मासाणं वीसुत्तरं दिवससयं भवति - सवीसतिमासो पण्णासं दिवसा, ते वीसुत्तरसयमज्झाओ सोहिया, सेसा सत्तरी ।

जे भद्दवयबहुलदसमीए पज्जोसवेंति तेसि असीतिदिवसा मज्झिमो वासकालोग्गहो भवति ।
जे सावणपुण्णिमाए पज्जोसविंति तेसिं णउतिं चेव दिवसा मज्झिमो चेव वासकालोग्गहो भवति ।
जे सावण बहुलदसमीए पज्जोसवेंति तेसिं दसुत्तरं दिवससयं मज्झिमो चेव वासकालोग्गहो भवति ।

जे आसाढपुण्णिमाए पज्जोसविंति तेसिं बीसुत्तरं दिवससयं जेट्ठो वासुग्गहो भवति । सेसंतरेसु दिवसपमाणं वत्तव्वं । एवमादिपगारेहिं वरिसारत्तं एगखेत्ते अच्छिता कत्तियचाउम्मासियपडिवयाए अवस्सं णिग्गंतव्वं ।

अह मग्गसिरमासे वासति चिक्खल्लजलाउला पंथा तो अववातेण एक्कं उक्कोसेणं तिण्णि वा - दस राया जाव तम्मि खेत्ते अच्छंति, मार्गसिरपौर्णमासीयावदित्यर्थः । मग्गसिरपुण्णिमाए जं परतो जति वि सचिक्खल्ला पंथा वासं वा गाढं अणुवरयं वासति जति विप्लवतेहिं तहावि अवस्सं णिग्गंतव्वं । अह ण णिग्गच्छंति तो चउगुरुगा । एवं पंचमासितो जेट्ठोग्गहो जातो ॥३१५५॥ - नि० भा० चू०[११]

ताहे जाओ असंचईआउ खीरदहीतोगाहिमगाणिय ताओ असंचइयातो घेप्पंति संचइयातो ण घेप्पंति घततिलगुलणवणीतादीणि । पच्छा तेसिं खते जाते जता कज्जं भवति तदा ण लब्भंति तेण ताओ ण घेप्पंति। अह सड्ढा णिबंधेण निमंतेति ताहे भण्णति । जदा कज्जं भविस्सति, तदा गेण्हीहामो । बालादि-बालगिलाणवुड्ढसेहाण य बहूणि कज्जाणि उप्पज्जंति, महंतो य कालो अच्छति, ताहे सड्ढा तं भणंति-जाव तुब्भे समुद्दिसध ताव, अत्थि चत्तारि वि मासा । ताहे नाऊण गेण्हंति जतणाए, संचइयंपि ताहे घेप्पत्ति, जधा तेसिं सड्ढाणं सड्ढा वड्ढंति अवोच्छिन्ने भावे चेव भणंति होतु अलाहिं पज्जतंति । सा य गहिया थेरबालदुब्बलाणं दिज्जति, बलियतरुणाणं न दिज्जति, तेसिं पि कारणे दिज्जति, एवं पसत्थविगतिग्गहणं । अप्पसत्था ण घेत्तव्वा । सावि गरहिता विगती कज्जेणं घिप्पति । इमेणं 'वासावासं पज्जोसविताणं अत्थेगतियाणं एवं वुत्तपुव्वं भवति, अत्थो भंते गिलाणस्स, तस्स य गिलाणस्स वियडेणं पोग्गलेण वा कज्जं से य पुच्छितव्वे, केवतिएणं मे अट्ठो जं से पमाणं वदति एवतिएणं मम कज्जं तप्पमाणतो घेत्तव्वं । एतंमि कज्जे वेज्जसंदिसेण वा, अणत्थ वा कारणे आगाढे जस्स सा अत्थि सोवि न विज्जति तं च से कारणं दीविज्जति । एवं जाइति स माणे लभेज्जा जाधे य तं पमाणं पत्तं भवति जं तेण गिलाणेण भणितं ताहे भण्णति-होउ अलाहित्ति वत्तव्वं सिया, ताहे तस्यापि प्रत्ययो भवति, सुव्वंतं एते गिलाणट्ठयाए मग्गंति, न एते अप्पणो अट्ठाए मग्गंति । जति पुण अप्पणो अट्ठाते मग्गंता तो दिज्जंतं पडिच्छंता जावतियं दिज्जति, जेवि य पावा तेसिं पडिघातो कतो भवति । तेवि जाणंति, जधा तिन्नि दत्तीउ गेण्हंति सुव्वंत्तं गिलाणट्ठाए सेणं एवं वदंतं अण्णाहि पडिग्गहेहिं भंते तुमंपि भोक्खसि वा पाहिसे वा, एवं से कप्पति पडिग्गाहित्तए नो से कप्पति गिलाण णीस्साए पडिग्गाहित्तए, एवं विगतिट्ठवणा गता ॥ - द० चू०१०[१२]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसत्थविगतीतो खीरं दहिं णवणीयं घयं गुलो तेल्ल ओगाहिरा च, अप्पसत्थाओ महु-मज्ज-मंसा । आयरिय-बाल-वुड्ढाइयाणं कज्जेसु पसत्था असंचइयाओ खीराइया घेप्पंति, संचतियाओ घयाइया ण घेप्पंति, तासु खीणासु जया कज्जं तया ण लब्भति, तेण तातो ण घेप्पंति ।

अह सड्ढा णिब्बंधेण भणेज्ज ताहे ते वत्तव्वा - "जया गिलाणाति कज्जं भविस्सति तया घेच्छामो, बाल-वुड्ढ-सेहाण य बहूणि कज्जाणि उप्पज्जंति, महंतो य कालो अच्छियव्वो, तम्मि उप्पण्णे कज्जे घेच्छामो" त्ति।

महु-मज्ज-मंसा गरहियविगतीणं गहणं आगाढे गिलाणकज्जं "गरहालाभपमाणे" त्ति गरहंतो गेण्हति, अहो! अकज्जमिणं किं कुणिमो, अण्णहा गिलाणो ण पण्णप्पइ, गरहियविगतिलाभे य पमाणपत्तं गेण्हंति, णो अपरिमितमित्यर्थः, जावतिता गिलाणस्स उवउव इति तंमत्ताए घेप्पमाणीए दातारस्स पच्चयो भवति, पावं णट्ठा गेण्हंति ण जीहलोलयाए त्ति ॥३१७०॥

- नि॰ भा॰ चू॰[१३]

इदाणिं अच्चित्ताणं गहणं-छारडगलयमल्लयादीणं उदुबद्धे गहिताणं वासासु वोसिरणं, वासासु धरणं छारादीणां, जति ण गिण्हति मासलहुं, जो य तेहिं विणा विराधणा गिलाणादीण भविस्सति । भायणविराधणा लेपेण विणा तम्हा घेत्तव्वाणि, छारो एक्केकोणे पुंजो घणो कीरति । तलियावि किं विज्जति जदा णविकिंचि ताओ तदा छारपुंजे णिहम्मंति मा पणइज्जिस्संति, उभतो काले पडिलेहिज्जंति, ताओ छारो य जताअवगासो भूमीए नत्थि, छारस्स तदा कुंडगा भरिज्जंति, लेवो समाणेऊण भाणस्स हेट्ठा कीरति, छारेण उग्गुंडिज्जति, स च भायणेण समं पडिलेहिज्जति । अथ अच्छंतयं भायणं णत्थि ताहे मल्लयं लेवेउणं भरिज्जति पडिहत्थं पडिलेहिज्जति य ।

- द॰ चू॰[१४]

छार-डगल-मल्लमातीणं गहणं, वासा उडुबद्धगहियाण वोसिरणं, वत्थातियाण धरणं, छाराइयाण वा धरणं, जति ण गेण्हंति तो मासलहुं, जा य तेहिं विणा गिलाणातियाण विराहणा, भायणे वि विराधिते लेवेण विणा। तम्हा घेत्तव्वाणि । छारो गहितो एककोणे घणो कज्जति । जति ण कज्जं तलियाहिं तो विगिंचिज्जंति । अह कज्जं ताहि तो छारपुंजस्स मज्झे ठविज्जति । पणयमादि-संसज्जणभया उभयं कालं तलियाडगलादियं च सव्वं पडिलेहंति । लेवं संजोएत्ता अप्पडिभुज्जमाणभायणहेट्ठा पुप्फगे कीरति, छारेण य उग्गुंठिज्जति, सह भायणेण पडिलेहिज्जति, अह अपडिभुज्जमाणं भायणं णत्थि ताहे भल्लगं लिंपिऊण पडिहत्थं भरिज्जति । एवं काणइ गहणं काणइ वोसिरणं काणइ गहणधरणं ॥३१७५॥

- नि॰ भा॰ चू॰[१५]

नि॰ भा॰ चू॰ में उपलब्ध किन्तु **द॰ नि॰** में अनुपलब्ध इन गाथाओं का विषयप्रतिपादन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है । **नि॰ भा॰** सं॰ ३१५४ व **द॰ नि॰** गाथा ६८ में श्रमणों के सामान्य चातुर्मास (१२० दिन) के अतिरिक्त न्यूनाधिक्य चातुर्मास की अवधि का वर्णन है । उसमें ७० दिन के जघन्य वर्षावास का उल्लेख है । ३१५५वीं गाथा में ७० दिन का वर्षावास किन स्थितियों में होता है यह बताया गया है जो कि विषय प्रतिपादन की दृष्टि से बिल्कुल प्रासङ्गिक और आवश्यक है ।

गाथा सं॰ ३१६९ और ३१७० में श्रमणों द्वारा आहार ग्रहण के प्रसङ्ग में विकृति ग्रहण का नियम वर्णित है । उल्लेखनीय है कि **द॰ नि॰** की ८२वीं गाथा के चारों चरण उक्त दोनों गाथाओं के क्रमशः प्रथम (३१६९) और द्वितीय चरण, तृतीय एवं चतुर्थ चरण (३१७०) के समान हैं । इन दोनों गाथाओं का अंश निर्युक्ति में एक ही गाथा में कैसे मिलता है ? यह विचारणीय है ।

विकृति के ही प्रसङ्ग में अचित्त विकृति का प्ररूपण करने वाली ३१७५वीं गाथा भी प्रासङ्गिक है क्योंकि **द॰ नि॰** में सचित्त विकृति का प्रतिपादन है परन्तु अचित्त विकृति के प्रतिपादन का अभाव है जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असङ्गत है । अतः यह गाथा भी द॰ नि॰ का अङ्ग रही होगी । यही स्थिति शेष दोनों गाथाओं ३१९२ और ३२०९ की भी है ।

इस प्रकार चूर्णि में इन गाथाओं का विवेचन और विषय-प्रतिपादन में साकाङ्क्षता द॰ नि॰ से इन गाथाओं के सम्बन्ध पर महत्त्वपूर्ण समस्या उपस्थित करती हैं ।

द॰ नि॰ की गाथा संख्या पर विचार करने के पश्चात् गाथाओं में प्रयुक्त छन्दों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है - **द॰ नि॰**, प्राकृत के मात्रिक छन्द 'गाथा' में निबद्ध है । 'गाथा सामान्य' के रूप में जानी जाने वाली यह संस्कृत छन्द आर्या के समान है । **'छन्दोऽनुशासन'**[१६] की वृत्ति में उल्लेखित भी है - 'आर्यैव संस्कृतेतर भाषासु गाथा संज्ञेति गाथा लक्षणानि' अर्थात् संस्कृत का आर्या छन्द ही दूसरी भाषाओं में गाथा के रूप में जाना जाता है । दोनों - गाथा सामान्य और आर्या में कुल मिलाकर ५७ मात्रायें होती हैं । गाथा के चरणों में मात्रायें क्रमशः इस प्रकार हैं - १२, १८, १२ और १५ । अर्थात् पूर्वार्द्ध के दोनों चरणों में मात्राओं का योग ३० और उत्तरार्द्ध के दोनों चरणों का योग २७ है ।

'आर्या' और 'गाथा सामान्य' में अन्तर यह है कि आर्या में अनिवार्य रूप से ५७ मात्रायें ही होती हैं, इसमें कोई अपवाद नहीं होता, जबकि गाथा में ५७ से अधिक-कम मात्रा भी हो सकती है, जैसे ५४ मात्राओं की गाहू, ६० मात्राओं की उद्गाथा और ६२ मात्राओं की गाहिनी भी पायी जाती है । मात्रावृत्तों की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके चरणों में लघु या गुरु वर्ण का क्रम और उनकी संख्या नियत नहीं है। प्रत्येक गाथा में गुरु और लघु की संख्या न्यूनाधिक होने के कारण 'गाथा सामान्य' के बहुत से उपभेद हो जाते हैं ।

द॰ नि॰ में 'गाथा सामान्य' के प्रयोग का बाहुल्य है । कुछ गाथायें गाहू, उद्गाथा और गाहिनी में भी निबद्ध हैं । सामान्य लक्षण वाली गाथाओं (५७ मात्रा) में बुद्धि, लज्जा, विद्या, क्षमा, देही, गौरी, धात्री, चूर्णा, छाया, कान्ति और महामाया का प्रयोग हुआ है ।

गाथा सामान्य के उपभेदों की दृष्टि से अलग-अलग गाथावृत्तों में निबद्ध श्लोकों की संख्या इस प्रकार है[१७] - बुद्धि-१. लज्जा-४, विद्या-११, क्षमा-९, देही-२८, गौरी-२२, धात्री-२३, चूर्णा-१५, छाया-८, कान्ति-३, महामाया-३, उद्गाथा-९ और अन्य-४ ।

यह बताना आवश्यक है कि सभी गाथाओं में छन्द लक्षण घटित नहीं होते हैं । दूसरे शब्दों में, सभी गाथायें छन्द की दृष्टि से शुद्ध हैं या निर्दोष हैं, ऐसी बात नहीं है कुछ गाथायें अशुद्ध भी हैं ।

निर्युक्ति गाथाओं में गाथा-लक्षण घटित करने के क्रम में जो तथ्य सम्मुख प्रकट होते हैं वे इस प्रकार हैं -

इस निर्युक्ति में १४१ में से ४४ गाथायें गाथा लक्षण की दृष्टि से निर्दोष हैं अर्थात् इन ४४ गाथाओं में गाथा लक्षण यथावत् घटित हो जाते हैं । इनका क्रम इस प्रकार है - १, ३, ४, ९, १४, १६, १८, २१, २५, २६, २८, ३०, ३७, ३९, ४२, ४४, ४७, ४८, ५२, ५३, ५६, ६१, ६२, ७२, ७७, ८७, ८८, ९१, ९३, ९४, ९५, ९९, १००, १०५, १०७, १०९, ११२, ११५, ११९, १२०, १२१, १२३, १२४, १३४ ।

दस गाथाओं में चरण-विशेष के अन्तिमपद के गुरुवर्ण की ह्रस्व के रूप में गणना करने से गाथा-लक्षण घटित हो जाते हैं तो सोलह गाथाओं में चरण-विशेष के अन्तिमपद के लघु वर्ण को गुरु के रूप में गणना करने से छन्द लक्षण घटित हो जाता है । कवि परम्परा के अनुसार छन्द-पूर्ति के लिए प्रयोजनानुरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरण के अन्तिम वर्ण के गुरु का ह्रस्व और ह्रस्व का गुरु उच्चारण या गणना करने का विधान है[१८] । ये गाथायें निम्न हैं - गुरु की लघु गणना करने मात्र से छन्द की दृष्टि से शुद्ध होने वाली गाथायें - १३, १५, १९, २२, ३४, ४१, ४९, ११८, १२५, १३९ । लघु की गुरु गणना करने मात्र से छन्द की दृष्टि से शुद्ध हो जाने वाली गाथायें - ५, ११, २३, २७, २९, ३५, ३६, ३८, ५५, ५७, ९०, ९७, ११०, ११६, १३६, १३७ । इस प्रकार **द. नि.** (१४१) की आधी गाथायें (४४ + १० + १६ =७०) छन्द की दृष्टि से यथास्थिति में ही शुद्ध हैं ।

अब ७१ गाथायें ऐसी शेष रहती हैं जिनका पाठ छन्द की दृष्टि से न्यूनाधिक रूप में अशुद्ध कहा जा सकता है । इनमें १२ गाथायें ऐसी हैं जिनमें प्राकृत व्याकरण के शब्द अथवा धातु रूपों के नियमानुसार गाथा-विशेष के एक या दो शब्दों पर अनुस्वार की वृद्धि कर देने पर गाथा-लक्षण घटित हो जाता है । ऐसी गाथायें निम्न है - प्राकृत शब्द अथवा धातु रूपों के अनुरूप अनुस्वार का ह्रास एवं वृद्धि कर देने मात्र से छन्द की दृष्टि से शुद्ध होने वाली गाथायें - (२४) चरणेसु > चरणेसुं, (३१) दुग्गेसु > दुग्गेसुं, (४०) भिक्खूण > भिक्खूणं, (६५) तेण > तेणं, (७५) मोत्तूण > मोत्तूणं, (७६) इयरेसु > इयरेसुं, (८५) वासासु > वासासुं, (८६) मोत्तु > मोत्तुं, (१०२) वत्थेसु > वत्थेसुं, (१०६) गहण > गहणं, कहण > कहणं (१११) णाउ > णाउं, (१४०) दोसेणु > दोसेणं ।

द. नि. में ग्यारह गाथायें ऐसी हैं जिनमें प्राकृत व्याकरण के शब्द अथवा धातु रूपों के नियमानुरूप शब्द-विशेष में किसी ह्रस्व मात्रा को दीर्घ कर देने पर और किसी दीर्घ मात्रा को ह्रस्व कर देने पर छन्द लक्षण घटित हो जाता है । ये गाथायें निम्नलिखित हैं - उपयुक्त प्राकृत शब्द-धातु रूपों के अनुरूप स्वर को ह्रस्व या दीर्घ कर देने और स्वर में वृद्धि या ह्रास करने से छन्द की दृष्टि से शुद्ध होने वाली गाथायें - (७०) अणितस्सा > अणितस्स, आरोवण > आरोवणा, (७१) काईय > काइय, (८१) उ > तो, (९७) उ > तो, (१०३) णो > ण, (११४) णाणट्ठी > णाणट्ठि, (११८) णाणट्ठी > णाणट्ठि, (१२६) तो > तु, (१३०) मणुस्स > मणुस्से, (१३१) असंजयस्सा > असंजयस्स, (१३३) तीत्थंकर > तित्थंकर ।

इस निर्युक्ति में १८ गाथायें ऐसी हैं जिनमें छन्द, लक्षण घटित करने के लिए पादपूरक निपातों - तु, तो, खु, हि, व, वा, च, इत्यादि और इन निपातों के विभिन्न प्राकृत रूपों को समाविष्ट करना पडता है । इन गाथाओं की सूची इस प्रकार है - पाद पूरक निपातों की वृद्धि करने से छन्द की दृष्टि से शुद्ध गाथायें - २ 'उ', ६ 'हि', ७ 'अ', ८ 'उ', २० 'उ', ४३ 'च', ५३ 'च', ४६ 'च', ५१ 'य', ७३ 'य', ७४ 'उ', ७९ 'य', ८१ 'उ', ८४ 'उ', ८५ 'तु', १२२ 'य', १२९ 'उ', १३८ 'अ' ।

इस प्रकार ४३ (१४ + ११ + १८) गाथाओं में छन्द की दृष्टि से पाठ-शुद्धि के लिए लघु संशोधनों की आवश्यकता है और इस तरह ११३ (७० + ४३) गाथायें छन्द की दृष्टि से शुद्ध हो जाती हैं ।

अब शेष २६ गाथाओं में गाथा लक्षण (घटित करने के उद्देश्य से) पाठान्तरों का अध्ययन करने हेतु **दशाश्रुतस्कन्ध** की समानान्तर गाथाओं का सङ्कलन किया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्र.सं.	गाथा	चरण	संशोधन	आधारग्रन्थ	गाथा
१.	१०	पू॰ उ॰	ओवरई > ओवरइ ण का ग्रहण	द॰चू॰ द॰चू॰	चूर्णा
२.	१२	उ॰	वइक्कम > वइक्कमे चार्थक अ की वृद्धि	द॰चू॰	धात्री
३-४	३२-३३	उ॰	दव्व > दव्वे उयणाईसु > ओयणाईसुं	द॰नि॰	देही
५.	४१	उ॰	तव > तवम्मि	नि॰भा॰	लज्जा
६.	५४	उ॰	'काले' की वृद्धि	द॰चू॰	लज्जा
७.	५८	पू॰	उणाइरित्त > ऊणातिरित्त	नि॰भा॰	विद्या
८.	५९	उ॰	चिक्खल > चिक्खल्ल	नि॰भा॰	विद्या
९.	६०	उ॰	अपडिक्कमिउं > अप्पडिक्कमितुं	नि॰भा॰	देही
१०.	६३	पू॰	गतव्वं > ठायव्वं	नि॰भा॰	देही
११.	६४	पू॰	बाहिं ठित्तति > बाहिट्ठिया	नि॰भा॰	क्षमा
१२.	६६	पू॰	'ण' छूट गया है प्रकाशनदोष	नि॰भा॰	गौरी
१३.	६८	उ॰	मिग्गसिरे > मग्गसिरे	नि॰भा॰	चूर्णा
१४.	६९	पू॰ उ॰	ठियाणऽतीएमग्गसीरे > ठियाणऽतीतमग्गसिरे होति > भणितो गतव्वं > णिग्गमणं	 नि॰भा॰ नि॰भा॰ नि॰भा॰	देही
१५.	७०	उ॰	अणितस्सा आरोवण > अणिताणं आरोवण	बृ॰क॰भा॰	विद्या
१६.	७८	उ॰	जंघद्धे कोवि > जंघद्धेक्कोवि	नि॰भा॰	धात्री
१७.	८०	पू॰ उ॰	पुव्वाहारोसवण > पुव्वाहारोसवणं सत्तिउग्गहणं > सत्तिओ गहणं संचइय > संचइए पसत्था उ > पसत्थाओ	नि॰भा॰	धात्री
१८.	८३	पू॰	कारणओ > कारणे	नि॰भा॰	देही
१९.	८९	पू॰	संपाइमवहो > संपातिवहो नेहछेओ > णेहछेदु	नि॰भा॰ नि॰भा॰	धात्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्र.सं.	गाथा	चरण	संशोधन	आधारग्रन्थ	गाथा
२०.	९२	पू.	दुरुत्तग्ग > दुरुतग्गो	नि.भा.	देही
२१.	९८	उ.	खिंसणा य > खिंसणाहिं	नि.भा.	चूर्णा
२२.	१०१	उ.	अवलेहणीया किमिराग कद्दम कुसुंभय हलिद्दा > अवलेहणि किमि कद्दम कुसुंभरागे हलिद्दा य	नि.भा.	धात्री
२३.	१०४	उ.	अणुयत्तीह > अणुयत्तीहिं	नि.भा.	धात्री
२४.	१०८	उ.	पुच्छति य पडिक्कमणे पुव्वभासा चउत्थम्मि > पुच्छा तिपडिक्कमणे, पुव्वब्भासा चउत्थंपि	नि.भा.	गौरी
२५.	११३	पू.	मंगल्लं > तु मंगलं	नि.भा.	छाया
२६.	१३०	उ.	मणुस्स > मणुस्से	द.चू.	देही

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि कुछ गाथाओं को, उनमें प्राप्त शब्द-विशेष को समानान्तर गाथाओं के परिप्रेक्ष्य में व्याकरण की दृष्टि से संशोधित कर शुद्ध कर सकते हैं जैसे गाथा सं. १२, ४७, ६३, ८३, ९२, ९८, १०४ और १३० ।

गाथा सं. ५९, ६९, ७८, ८०, ८९, ११३ और १४१ समानान्तर गाथाओं के पाठों के आलोक में और साथ ही साथ प्राकृत भाषा के व्याकरणानुसार वर्तनी संशोधित कर देने पर छन्द की दृष्टि से शुद्ध हो जाती हैं ।

गाथा सं. ६३ और ६९ समानान्तर गाथाओं के अनुरूप एक या दो शब्दों का स्थानापन्न समाविष्ट कर देने से छन्द की दृष्टि से निर्दोष हो जाती हैं ।

गाथा सं. ५४ और ५८ में क्रमशः 'काले' और 'मासे' को छन्द-शुद्धि की दृष्टि से जोड़ना आवश्यक है । उक्त दोनों शब्द इन गाथाओं को सभी समानान्तर पाठों में उपलब्ध हैं । गाथा सं. १० और ६६ में 'ण' की वृद्धि आवश्यक है । इन शब्दों को समाविष्ट करना विषय-प्रतिपादन को युक्तिसङ्गत बनाने की दृष्टि से भी आवश्यक है । सम्भव है उक्त गाथाओं में 'काले', 'मासे' और 'ण' का अभाव मुद्रण या पाण्डुलिपि-लेखक की भूल हो सकती है । गाथा सं. १०१ और १०८ समानान्तर गाथाओं के आलोक में सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध को बदलने पर छन्द की दृष्टि से शुद्ध होती हैं ।

इस निर्युक्ति की गाथाओं से, गाथाओं के समानान्तर पाठालोचन के क्रम में कुछ अन्य उल्लेखनीय तथ्य भी हमारे समक्ष आते हैं । जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है गाथा सं. ८२ के चारों चरण, **नि. भा.** की दो गाथाओं ३१६९ और ३१७० में प्राप्त होते हैं ।

इसी प्रकार गाथा सं. ८६ में प्राप्त 'संविग्ग' और 'निद्दओ भविस्सइ' के स्थान पर **नि. भा.** की गाथा ३१७४ में क्रमशः 'सचित्त' और 'होहितिणिधम्मो' प्राप्त होता है । इन दोनों गाथाओं में शब्दों का अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने पर भी मात्राओं का समायोजन इस प्रकार है कि छन्द-रचना की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

द. नि. में दृष्टान्तकथाओं को, एक या दो गाथाओं में उनके प्रमुख पात्रों तथा घटनाओं को सूचित करने वाले शब्दों के माध्यम से वर्णित किया गया है। इङ्गित नामादि भी समानान्तर गाथाओं में भिन्न-भिन्न रूप में प्राप्त होते हैं। पर इनमें भी मात्राओं का समायोजन इस प्रकार है कि छन्द-योजना अप्रभावित रहती है। चम्पाकुमारनन्दी (गाथा ९३) के स्थान पर **नि. भा.** ३१८२ में चंपा अणंगसेनो और वणिधूयाऽच्चंकारिय (१०४) के स्थान पर धणधूयाऽच्चंकारिय (**नि. भा.** ३१९४) प्राप्त होता है।

जो गाथायें छन्द की दृष्टि से शुद्ध भी हैं उनकी समानान्तर गाथाओं में भी छन्द-भेद और पाठ-भेद प्राप्त होते हैं। निर्युक्ति की गाथा सं. ३ 'बाला मंदा' **स्थानाङ्ग, दशवैकालिकनिर्युक्ति, तन्दुलवैचारिक, नि. भा.** और **स्थानाङ्ग-अभयदेववृत्ति** में पायी जाती है। इन ग्रन्थों में यह गाथा चार भिन्न-भिन्न गाथा छन्दों में निबद्ध है और सभी छन्द की दृष्टि से शुद्ध है। **द. नि.** में यह गाथा ६० मात्रा वाली उद्गाथा, स्थानाङ्ग, **द. नि.** और **स्थानाङ्गवृत्ति** में यह गाथा ५७ मात्रा वाली गौरी गाथा में व प्रकीर्णक **तन्दुलवैचारिक** में क्षमा गाथा में तो **नि. भा.** में ५२ मात्रावाली गाहू गाथा में निबद्ध है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पाठान्तर केवल त्रुटियों का ही सूचक नहीं है अपितु ग्रन्थकार या रचनाकार की योजना के कारण भी गाथाओं में पाठ-भेद हो सकता है।

बाला मंदा किड्डा बला य पण्णा य हायणिपवंचा ।
पब्भारमुम्मुही सयणी नामेहि य लक्खणेहिं दसा ॥३॥ **द. नि.**

बाला किड्डा य मंदा य बला य पण्णा य हायणी ।
पंवचा पब्भारा य मुम्मुही सायणी तथा ॥१०॥ **१५४, स्था.**

बाला किड्डा मंदा बला य पन्ना य हायणि पवंचा ।
पब्भार मम्मुही सायणी य दसमा य कालदसा ॥१०॥ **त. वै.**

बाला किड्डा मंदा बला य पन्ना य हायणि पवंचा ।
पब्भारा मुम्मुही सायणी य दसमा य कालदसा ॥४५॥ **त. वै.**

बाला मंदा किड्डा बला पण्णा य हायणी ।
पवंचा पब्भारा य मुम्मुही सायणी तहा ॥३५४५॥ **नि. भा., ४**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि किसी प्राचीन ग्रन्थ का पाठ-निर्धारण एक कठिन और बहुआयामी समस्या है फिर भी गाथाओं का छन्द की दृष्टि से अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। छन्द-दृष्टि से अध्ययन करने पर समानान्तर गाथाओं के आलोक में गाथा-संशोधन के अलावा विषय-प्रतिपादन को भी सङ्गत बनाने में सहायता प्राप्त होती है।

L. Alsdorf[11] के इस अभिमत को, कि प्राचीन जैनाचार्यों ने गाथाओं की रचना में छन्दों और प्राकृत भाषा के नियमों की उपेक्षा की, पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर यह धारणा बनती है कि उक्त अशुद्धियाँ पाण्डुलिपियों के लेखक, सम्पादक और किञ्चित् अंशों में मुद्रण-दोष के कारण भी निर्युक्तियों में आ गई हैं। हाँ, कुछ अंशों में निर्युक्तिकार का छन्द और व्याकरण के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टिकोण भी उत्तरदायी हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ :

१. **दशाश्रुतस्कन्ध-मूल-निर्युक्ति-चूर्णि,** मणिविजयगणि ग्रन्थमाला, सं० १४, भावनगर १९५४ ।

२. "दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति", "**निर्युक्तिसङ्ग्रह**" सं० जिनेन्द्रसूरि, हर्षपुष्पामृत जैन ग्र० मा०, १८९, लाखाबावल १९८९, पृ० ४७६-४९६ ।

३. H. R. Kapadia, *'Government Collection of Manuscripts'*, भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, खण्ड १७, भाग-२, पूना १९३६, पृ० ६७ ।

४. **जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास,** भाग-१, पा० वि० ग्र० मा० सं० ६, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, द्वि० सं० १९८९, पृ० ३४ ।

५. संग्रा० ह० दा० वेलणकर, **जिनरत्नकोश,** खण्ड एक, गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल सिरीज, भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना १९४४, पृ० १७२ ।

६. H. R. Kapadia, *'A History of the canonical Literature of Jainas'* लेखक, सूरत १९४१, पृ० १८२ ।

७. कापडिया, *'Government Collection'*, ओरिएण्टल, पूना १९३६, पृ० ६७ ।

८. कापडिया, *'Canonical'*, सूरत १९४४, पृ० १८२ ।

९. **निशीथसूत्रम् (भाष्य एवं चूर्णि सहित),** सं० आचार्य अमरमुनि, ग्र० मा० सं० ५, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली और सन्मति ज्ञानपीठ, राजगृह, उद्देशक १०, गाथा ३१३८-३२०९, (भाग ३) ।

१०. **द० चू०,** मणिविजय, भावनगर १९५४, पृ० ५५ ।

११. **नि० भा० चू०,** ३, अमरमुनि, दिल्ली, राजगृह, पृ० १३२ ।

१२. **द० चू०,** भावनगर १९५४, पृ० ५७ ।

१३. **नि० भा० चू०,** दिल्ली, राजगृह, पृ० १३५-१३६ ।

१४. **द० चू०,** भावनगर १९५४, पृ० ५८ ।

१५. **नि०भा०चू०,** दिल्ली, राजगृह, पृ० १३७ ।

१६. सं० प्रो० ह० दा० वेलणकर, **छन्दोऽनुशासन** (हेमचन्द्र), भारतीय विद्या भवन, बम्बई १९६१, पृ० १२८ ।

१७. १. बुद्धि (१) गाथा सं० १६ ।

२. लज्जा (४) गाथा सं० ८, ५४, ११९, १२७ ।

३. विद्या (११) ६, १४, १९, २९, ५८, ५९, ६१, ७१, ७७, १२२, १३७ ।

४. क्षमा (९) ९, १५, २३, ३५, ६४, ७२, ९७, ११२, ११६ ।

५. देही (२८) ४, ११, १६, १८, २४, २६, २७, ३२, ४७, ४८, ५५, ५६, ६०, ६२, ६३, ६९, ७९, ८३, ८४, ८५, ८६, ८८, ९२, १०३, १२०, १२४, १३०, १३५ ।

६. गौरी (२२) ५, २०, ३४, ३६, ३८, ४०, ४१, ४४, ५७, ६६, ७५, ९१, १०२, १०८, ११४, १२१, १२५, १३१, १३४, १३६, १३९, १४१ ।

७. धात्री (२२) १, १२, १३, २१, २२, ३७, ३९, ४३, ६५, ६७, ७८, ८०, ८९, १०१, १०४, १०९, ११०, ११५, ११७, ११८, १२८, १४० ।

८. चूर्णा (१५) १०, २५, २८, ४९, ५१, ५३, ६८, ७०, ८२, ९०, ९८, १०५, १०७, १२६, १३८ ।

९. छाया (८) ७, ५०, ७६, ८१, ८७, १११, ११३, १३२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. कान्ति (३) ९३, ९४, १०६ ।

११. महामाया (३) ३१, ९५, १०० ।

१२. उद्गाथा (८) २, ३, १७, २३, ४६, ५२, ७३, १२८ ।

१३. अन्य (३)

१८. ह्रस्वानामपि गुरुत्वम् इति अभिप्रायो वा; **छन्दोमञ्जरी**—कर्त्रा गङ्गादास, व्याख्याकार डॉ॰ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती, ग्रन्थमाला ३६, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी १९७८, पृ॰ ९ ।

१९. W. B. Bolee, *'The Nijjuttīs on the seniors of the Śvetâmbara Siddhānta'* फ्रैंज स्टेनर वर्लाग, स्टुअर्ट १९९५, प्रस्ता॰, पृ॰ ६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org